गुरमुखि होइ सु अलिपतो वरतै

गुरमुखि होइ सु अलिपतो वरतै..... (पृ. ३०३)

इस गुरुवाक् के अर्थ हैं — **जो गुरमुख है, वह अलिप्त रहता है ।** इस शबद में केन्द्रीय नुक्ता है — **'अलिप्त रहना',** जिस के विषय में गहरी विचार करने की आवश्यकता है ।

'अलिप्त' रहने के शाब्दिक अर्थ हैं — **लिपायमान न होना** — अर्थात माया में विचरण करते हुए, **माया में लिपायमान न होना ।**

जैसे जल महि कमलु निरालमु मुरगाई नै साणे ।।
सुरति सबदि भव सागरु तरीऐ नानक नामु वखाणे ।। (पृ ९३८)

जिउ जल महि कमलु अलिपतो वरतै तिउ विचे गिरह उदासु ।। (पृ ९४९)

साचि नामि मेरा मनु लागा ।।
लोगन सिउ मेरा ठाठा बागा ।।
बाहरि सूतु सगल सिउ मउला ।।
अलिपतु रहउ जैसे जल महि कउला ।। (पृ ३८४)

यह नुक्ता बहुत गहरा है, तथा गहरी विचार करते समय कई प्रश्न उत्पन्न होते हैं, जैसे कि —

1. **माया क्या है** ?

साधारणतया रुपये, नगदी, सोना, चाँदी आदि को ही **माया** समझा जाता है, परन्तु माया के अन्य कई स्वरूप हैं, जैसे कि —

क) **जड़ स्वरूप** — 'जड़ माया' में वे सब वस्तुएं आती है, जिन में चेतनता (consciousness) न हो, जैसे कि धरती, मकान, धातुएं, सोना, चाँदी, रूपये आदि ।

ख) **चेतन स्वरूप** — 'चेतन माया' में वे जीव हैं, जिनमें **चेतनता या बुद्धि प्रवृत्त होती है,** जैसे कि पशु, पक्षी, इन्सान अथवा रिश्तेदार, दोस्त-मित्र आदि।

कंचन नारी महि जीउ लुभतु है मोहु मीठा माइआ ।।
घर मंदर घोड़े खुसी मनु अन रसि लाइआ ।। (पृ १६७)

ग) **सूक्ष्म स्वरूप** — हवा, पानी, आकाश आदि ।

घ) **वाशना स्वरूप** — काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार आदि ।

ड) **रव्याल स्वरूप** — मन के रव्यालों तथा मनोभावों की उड़ान आदि ।

च) अन्तःकरण स्वरूप — मन की गहराईयों में पिछले रव्यालों तथा कर्मों की **'रंगत'** ।

जो वस्तु भी दृष्यमान है, सब **'माया'** है । माया की रंगत वाले समस्त रव्याल, मनोभाव, वाशनाएं **'माया' से उत्पन्न होते हैं** तथा इन की 'रंगत' में से उत्पन्न हमारे समस्त क्रिया-कर्म भी **'माया'** ही हैं ।

जिस प्रकार प्रकाश की 'अनुपस्थिति' को अंधकार कहा जाता है तथा अन्धेरे का अपना कोई अस्तित्व नहीं है — उसी प्रकार **ईश्वर की 'अनुपस्थिति' ही माया है ।**

अकाल पुरुष का अस्तित्व ही 'अटल' तथा 'सच' है ।

शेष सब कुछ ईश्वर ने अपने **'कवाओ'** अथवा **'हुकुम'** द्वारा सृजन किया तथा चला रहा है ।

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ ।।
दुयी कुदरति साजीऐ करि आसणु डिठो चाउ ।। (पृ ४६३)

यह समस्त मायिकी विस्तार बदलता रहता है तथा कूड़ है । इस को **'धूंए का पहाड़'** या **बादल की भाँति** भी बताया गया है क्योंकि यह **पल-पल बदलता रहता है तथा नाशवन्त है ।**

रे नर इह साची जीअ धारि ।।
सगल जगतु है जैसे सुपना बिनसत लगत न बार ।। (पृ ६३३)

कां को तनु धनु संपति कां की का सिउ नेहु लगाही ।।
जो दीसै सो सगल बिनासै जिउ बादर की छाही ।। (पृ. १२३१)

इहु जगु धूए का पहार ।।
तै सचा मानिआ किह बिचारि ।। (पृ ११८६-११८७)

2. माया के दोष क्या हैं ?

जब 'जीव' ईश्वर को **'भूल'** जाता है या **'विमुख'** हो जाता है, तब उस पर इस **भ्रम-रूपी 'माया' की परछांई पड़ जाती** है। ईश्वरीय **'अस्तित्व की**

याद' की अपेक्षा, हमारे मन पर **'अहम्' का आवरण चढ़** जाता है तथा जो भी हम सोचते, विचारते तथा कर्म करते हैं, उसे **माया की रंगत चढ़ जाती है।** इस प्रकार हम **'जो मै कीआ सो मै पाइआ'** के अटल कानून अधीन दुख-सुख, खुशी-गम, नरक-स्वर्ग भोगते हैं। ईश्वरीय याद के बिना हमारा मन कमजोर तथा चंचल होने के कारण **सदैव अहम् के केन्द्र के चारों ओर घूमता रहता है** तथा माया के भ्रम-भुलाव में विचरण करता हुआ कर्म-बद्ध होकर दुखी होता रहता है।

माइआ किस नो आखीऐ किआ माइआ करम कमाइ ॥
दुखि सुखि एहु जीउ बधु है हउमै करम कमाइ ॥ (पृ ६७)

इस प्रकार माया का सब से बड़ा **दोष** यह है कि हमारे मन को अपने भड़कीले तथा क्षणिक रंग द्वारा **भ्रमित करके हमें अपने 'मूल' अकाल पुरुष से भुला देती है** तथा हम दुख-सुख, जीवन-मरण के अटूट चक्र में विचरण करते हैं, जिससे छुटकारा अति कठिन है।

इन्हि माइआ जगदीस गुसाई तुम्हरे चरन बिसारे ॥
किंचत प्रीति न उपजै जन कउ जन कहा करहि बेचारे ॥ (पृ ८५७)
एह माइआ जितु हरि विसरै मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ ॥ (पृ ९२१)

3. माया में कैसे अलिप्त रहना है ?

'अलिप्त' को समझने के लिए पहले इस के विपरीत 'लिप्त' या 'संगति' की विचार करनी आवश्यक है। 'जैसा सेवै तैसो होइ' अनुसार हम जैसी संगति करते हैं, वैसा फल पाते हैं —

जो जैसी संगति मिलै सो तैसो फलु खाइ ॥ (पृ १३६९)

हमारा मन हवा या पानी की तरह है। पानी जिस चीज़ की संगति करता है, वैसा हो जाता है, जैसे कि — ठंडा, गर्म, कड़वा, मीठा, काला, सफेद आदि। इसका अर्थ यह है कि हमारा मन जैसी संगति करता है, वैसे ही हमारे ख्याल, मनोभाव, वाशना तथा कर्म होते हैं तथा हम उसी अनुसार अच्छा-बुरा फल भोगते हैं।

हम दो प्रकार की **संगति** करते हैं —

1. दैवीय उत्तम पवित्र **ईश्वरीय रंगत** वाले ख्याल, मनोभाव, धार्मिक किताबें या महापुरुषों की संगति।
2. **मायिकी रंगत** वाले ख्यालों, मनोभावों, वाशनाओं, साधारण किताबों तथा दुनियावी व्यक्तियों की संगति।

संगति कई **प्रकार तथा श्रेणियों** की होती है, जैसे —

1. **व्यक्तित्व की संगति** — गुरमुखों या दुनियावी व्यक्तियों की संगति।
2. **किताबों की संगति** — गुरबाणी, महापुरुषों की रचनाएं या दुनियावी रचनाएं।
3. **वाशना संगति** — सांसारिक वाशनाओं काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार में गलतान होना।
4. **मुर्दों की संगति** — मरे हुओं को याद करके दुखी होना।
5. **ख्यालों की संगति** — अच्छे या बुरे, दैवीय या मायिकी ख्यालों या कल्पना में उलझे रहना।

इस प्रकार हमारा मन जिस स्तर पर या जिस श्रेणी में विचरण करता है, उस का प्रभाव या 'रंगत' हमारे मन अथवा अन्तःकरण में दृढ़ होता है। इसलिए हर प्रकार की अच्छी बुरी संगति का **निर्णय करना आवश्यक है**।

उत्तम-श्रेष्ठ संगति वही है, **जहाँ पावन पवित्र दैवीय आत्मिक विचार उत्पन्न हों तथा हमारे मन की रुचि को अपने केन्द्र अकाल पुरुष की ओर प्रेरणा मिले तथा उसकी याद या सिमरन में सहायता मिले**। इसीलिए ही गुरबाणी में 'साध संगति' या 'सतसंगति' करने का ताकीदी हुकुम है।

मिलु साधसंगति भजु केवल नाम ॥ (पृ. १२)

करि साधसंगति सिमरु माधो होहि पतित पुनीत ॥ (पृ. ६३१)

संता संगति मिलि रहै ता सचि लगै पिआरु ॥ (पृ. ७५६)

इसीलिए हमें 'साधसंगति' के लिए यूँ प्रार्थना करनी सिखलायी गयी है —

सेई पिआरे मेलीं जिनां मिलिआं तेरा नाम चित आवै। (अरदास)

हरि जीउ आगै करी अरदासि ॥
साधू जन संगति होइ निवासु ॥ (पृ. ४१५)

कहु नानक प्रभ बरवम करीजै ॥
करि किरपा मोहि साधसंगि दीजै ॥ (पृ. ७३८)

होहु क्रिपाल सुआमी मेरे संतां संगि विहावे ॥ (पृ. ९६१)

ऐसी मांगु गोबिद ते ॥
टहल संतन की संगु साधू का हरि नामां जपि परम गते ॥ (पृ. १२९८)

इसके ठीक विपरीत **माया की संगति** है, जिसकी संगति में हम इतने तल्लीन तथा खोये हुए हैं कि हमें ईश्वर, उसके दैवीय गुणों तथा **उत्तम-पवित्र संगति की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती ।**

माइआ जालु पसारिआ भीतरि चोग बणाइ ।।
त्रिसना पंखी फासिआ निकसु न पाए माइ ।।
जिनि कीता तिसहि न जाणई फिरि फिरि आवै जाइ ।। (पृ ५०)

मनु माइआ मै फधि रहिओ बिसरिओ गोबिंद नामु ।। (पृ. १४२८)

यह दोनों बातें — **'दैवीय संगति'** तथा **'मायिकी कुसंगति'** एक दूसरे के **ठीक विपरीत तथा विरोधी हैं।**

एक दैवीय गुणों की ओर प्रेरित करती है तथा अकाल पुरुष की याद तथा सिमरन में सहायक है।

दूसरी इससे ठीक विपरीत माया में खचित कर के ईश्वर को **भुलाती** है ।

काहू की संगति मिलि जीवन मुकति होइ
काहू की संगति मिलि जमपुर जात है । (क. भा. गु ५४९)

इसलिए **'दैवीय गुणों'** का तथा **'मायिकी कुसंगति'** का मेल नहीं हो सकता । जिन्होंने

भक्ति करनी है
सिमरन करना है
नाम की प्राप्ति करनी है,

उन जिज्ञासुओं के लिए अन्य अनेक परमार्थिक साधनों के अतिरिक्त **'मायिकी कुसंगति' से बचना अथवा 'अलिप्त' रहना जरूरी है। 'वाटिका के लिए' मेंड़ बांधनी आवश्यक है।** अन्यथा साथ ही साथ, **मायिकी वाशनाओं की कुसंगति के 'हिरण'** वाटिका को प्रफुल्लित नहीं होने देंगे या पूर्णतया उजाड़ देंगें ।

ते साकत चोर जिना नामु विसारिआ
मन तिन कै निकटि न भिटीऐ ।। (पृ १७०)

साकत संगु न कीजई पिआरे जे का पारि वसाइ ।।
जिसु मिलिऐ हरि विसरै पिआरे सो मुहि कालै उठि जाइ ।। (पृ. ६४१)

'मायिकी कुसंगति' से बचाव के लिए **'अलिप्त रहने'** की विधि सीखनी पड़ेगी, जिस विषय में और गहरी तथा दीर्घ विचार करने की आवश्यकता है —

1. **व्यक्तिगत कुसंगति** — यह तो साधारणतया माना जाता है कि जैसे इन्सान की हम संगति करते हैं, वैसे ही हो जाते हैं — क्योंकि दो संगियों में जिसका मन प्रबल होगा, उसकी रंगत का प्रभाव दूसरे पर होना अनिवार्य है। एक दूसरे के मन पर मानसिक किरणों (mental vibrations) का प्रभाव होता है। क्योंकि दुनिया में मायिकी रंगत वालों का **बाहुल्य** है इसलिए जिज्ञासुओं के लिए आवश्यक है कि वे दुनिया में रहते हुए **कम से कम लोगों के साथ वास्ता** (involvement) रखें।

कबीर साकत संगु न कीजीऐ दूरहि जाईऐ भागि ।।
बासनु कारो परसीऐ तउ कछु लागै दागु ।। (पृ १३७१)

इस प्रकार हम व्यक्तिगत कुसंगति से काफी हद तक **'अलिप्त'** रह सकते हैं परन्तु सच तो यह है कि हम जान बूझ कर खाह-मखाह दुनिया में समाज (society) के दायरे, मायिकी मामले तथा **रुझान बढ़ाते जाते हैं** तथा दुनिया के **अनावश्यक रुझानों में खचित हो कर अपना अमूल्य जीवन व्यर्थ खो रहे हैं।** जिज्ञासु के लिए आवश्यक है कि अपने रिश्तेदारों, दोस्तों, मित्रों तथा जान-पहचान के दायरे को सीमित करके **मन के मायिकी रुझान घटायें।** इन रिश्तेदारों तथा दोस्तों-मित्रों की **मोह-माया की रस्सियाँ ढीली करते हुए, इन से 'अलिप्त' रहने की विधि सीखें — अन्यथा हमारा मन इन का ही निशाना** (target) बना रहेगा।

इहु कुटंबु सभु जीअ के बंधन भाई भरमि भुला सैंसारा ।। (पृ ६०२)

"कबीर हमरा को नही हम किसहू के नाहि" वाला सबक सीख कर हम इस दुनिया से **अलिप्त** रह सकते हैं, अन्यथा 'पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु' वाली हमारी **दुर्गति होगी।**

2. **पुस्तकों की कुसंगति** — कहावत है कि किसी व्यक्ति का आचरण जाँचने के लिए किसी से पूछने की आवश्यकता नहीं, उसके सिरहाने पड़ी किताबें देख लो। उन किताबों से प्रकट हो जायेगा कि उसकी 'रुचि' या मन की 'रंगत' कैसी है।

यदि कोई किताब दूसरी बार पढ़ी जाये, तब तो पक्का सबूत हो जाता है कि **उसका 'आचरण' किताबों के ख्यालों या मनोभावों की 'रंगत' वाला है,** चाहे वह ऊपर से कैसा भी बना फिरे ।

इसी प्रकार संप्रदायों, देशों तथा विश्व के आचरण व नैतिकता के विषय में परख की जा सकती है । जिस संप्रदाय अथवा देश में जैसा **'साहित्य'** ज्यादा पढ़ा जाये अथवा उनकी रुचि जिस साहित्य को पढ़ने की हो और जिस प्रकार का साहित्य अधिक 'प्रचलित' हो— उस संप्रदाय तथा देश का **आचरण व 'नैतिकता' भी वैसी ही होती है ।**

इस कलयुगी समय में मायिकी रंगत अथवा तुच्छ मनोभावों वाला अथाह साहित्य छपा हुआ है, जिसे पढ़कर सृष्टि के जीव मायिकी रंगत के **तुच्छ ख्यालों तथा मनोभावों के बहाव में सहज-स्वभाव बहे जा रहे हैं ।**

तीनि भवन महि एका माइआ ॥
मूरखि पड़ि पड़ि दूजा भाउ द्रिड़ाइआ ॥ (पृ. ४२४)

इस लिखित साहित्य की 'संगति' घर बैठे भी हो सकती है तथा इसका 'प्रभाव' भी देर तक रहता है । इसलिए जिज्ञासुओं को **तुच्छ रूचियों की रंगत वाली किताबों से परहेज़ करना या 'अलिप्त' रहना चाहिए ।**

होरु कूड़ु पड़णा कूड़ु बोलणा माइआ नालि पिआरु ॥
नानक विणु नावै को थिरु नही पड़ि पड़ि होइ खुआरु ॥ (पृ. ८४)
मूरख दुबिधा पढहि मूलु न पछाणहि बिरथा जनमु गवाइआ ॥ (पृ. ११३३)

इसके विपरीत अच्छी 'दैवीय रंगत वाली किताबों' हरि गुण, हरि कथा तथा गुरबाणी का अभ्यास करना चाहिए —

हरि गुण पड़ीऐ हरि गुण गुणीऐ ॥
हरि हरि नाम कथा नित सुणीऐ ॥ (पृ. ९५)

हरि पड़ु हरि लिखु हरि जपि हरि गाउ
हरि भउजलु पारि उतारी ॥ (पृ. ६६९)

3. **वाशना कुसंगति** — गुरबाणी में लिखा है —

बिखै बिखै की बासना तजीअ नह जाई ॥
अनिक जतन करि राखीऐ फिरि फिरि लपटाई ॥ (पृ. ८५५)

पानी का स्वभाव है 'संगति' का प्रभाव लेना तथा ढलान की ओर बहना। इसी प्रकार **मन का स्वभाव कुसंगति का प्रभाव लेना तथा तुच्छ रुचियों की ओर बहना है।** कलयुग में विषय विकारों की जबरदस्त लहरें चल रही हैं। इसलिए हमारे कमजोर मन इन **तुच्छ विषय की लहरों से बच या अलिप्त नहीं रह सकते।** इनसे बचने या **अलिप्त रहने का** एक मात्र साधन है —

साधसंगति कै अंचलि लावहु बिखम नदी जाइ तरणी ।।

(पृ ७०२)

4. मृत्तकों की कुसंगति — प्रत्येक इन्सान के जीवन में निकटवर्ती सम्बन्धी, जैसे कि — माँ, बाप, बहन, भाई, पति, पत्नि, बच्चे, मित्रों आदि की मृत्यु होती रहती है। इन में कुछ मौतों का मन को अत्यन्त दुख तथा सदमा होता है। ऐसी दुखदायी मृत्यु को बार-बार याद करके उनके मोह में अत्यन्त दुखी होते रहते हैं।

दूसरे शब्दों में ऐसे मोह-माया वाले मृत्तकों की यादें हमारे अन्तःकरण के किसी कोने में बसी हुई होती हैं, जिनका हम मोह के जज़्बातों से पालन-पोषण करते तथा इनकी **याद द्वारा 'कुसंगति' करके दुख क्लेश भोगते हैं।**

हम मरे हुओं को याद करके उनके अवगुणों की चर्चा भी करते रहते हैं। इस प्रकार हम उन **मृत्तकों की कुसंगति ही नहीं करते** अपितु उनके **अवगुण भी ग्रहण करते हैं तथा अपना मन मैला करते हैं।**

इसलिए हमें चाहिए कि हम मरे हुओं को भुला दें, तभी हम **मृत्तकों की कुसंगति सें 'अलिप्त' रह सकते हैं।**

मूए कउ रोवहि किसहि सुणावहि भै सागर असरालि पइआ ।। (पृ ९०६)

5. ख्यालों की मानसिक कुसंगति — ख्यालों की कुसंगति (thoughts) व्यक्तिगत या किताबों की कुसंगति से भी **ज्यादा हानिकारक तथा गहरे प्रभाव वाली कुसंगति है।** इसलिए इस विषय पर गहरी विचार करने की आवश्यकता है।

व्यक्तित्व की कुसंगति तथा किताबों की कुसंगति से तो किसी प्रकार बच भी सकते हैं जैसे 'त्यागी साधू' या 'अनपढ़ लोग'। **परन्तु ख्यालों की कुसंगति से बचना अत्यन्त कठिन है।**

मन अति सूक्ष्म तथा पारे की भाँति चंचल है — यह एक क्षण के लिए भी नहीं टिकता। किसी शारीरिक रुझान के बिना भी यह किन्हीं 'ख्यालों' में अपनी **'रुचियों'**

अनुसार व्यस्त तथा उलझा रहता है । इस प्रकार हम सदैव तुच्छ रुचियों अनुसार 'खाह-मखाह' दुनिया में लिप्त रहते हैं ।

रव्यालों की दो तह हैं —

1. ऊपरी मन के रव्याल (superfluous thoughts) जो आते-जाते रहते हैं।

2. वे रव्याल जिन्हें हम **बार-बार याद करके तथा घोट-घोट कर अपने मन की निचली तह में जमा कर लेते हैं।** उन रव्यालों की हमारे मन में 'फाइल' बन जाती है।

उदाहरणस्वरूप यदि किसी ने हमारे साथ बुरा व्यवहार किया या कोई ताना दिया तब हम उस ताने को या उस विरोधी बात को बार-बार याद कर के अपने मन पर उस 'रोष' को **और गहरा अंकित करते जाते हैं ।** इसका परिणाम यह होता है कि जब भी वह ताने मारने वाला या हमारा विरोधी हमें याद आ जाये, तब उस तीक्ष्ण 'रोष' का हमारे मन पर **अति गहरा तथा दुखदायी प्रभाव होता** है तथा हमारा मन ईर्ष्या, द्वेष, नफरत तथा क्रोध की अग्नि में जलता-भुनता है। इस प्रकार हर बार जब उस 'फाइल' को खोलते हैं, तब हमारे मन पर उसकी **रंगत और गाढ़ी तथा गहरी होती जाती है।** समयोपरान्त यह 'रोष' हमारे अन्तःकरण में उतर जाते हैं। यद्यपि उस 'रोष' का 'कर्त्ता' दूर भी हो, तो भी अचानक उस 'रोष' की याद या रव्याल आने से ही हमारे मन पर अत्यन्त बुरा प्रभाव होता है। जिससे हम नफरत, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष में जलते-भुनते-चिड़ते-कुढ़ते हुए **मन पर मैल चढ़ाई जाते हैं तथा दुखी होते रहते हैं।**

दुखदायी बात यह है कि ऐसे 'रोष' या 'फाइल' **एक दो नहीं, अपितु अनेक ही अपने हृदय में जमा की हुई हैं ।** जब भी हमारा मन ऊपरी रुझान से **खाली** होता है, तब ही इन गहरे रोष, शिकवे, शिकायतों की मैल की **'भड़ास' अन्दर से उभर आती है तथा हमारे मन को जला देती है ।** यहाँ नुक्ते वाली बात यह है कि यह व्यक्तिगत संगति से दूर होने के बावजूद मात्र 'रव्यालों की संगति' का परिणाम है।

व्यक्तित्व की कुसंगति से रव्यालों की कुसंगति अत्यन्त दुखदायी, खतरनाक, विषम तथा गहरी असरदायक है तथा **अलिप्त रहने से बिल्कुल उलट है।** परन्तु हम इस रव्यालों की मानसिक कुसंगति में अच्छी तरह उलझ कर गिरे जाते हैं । जिस कारण हमारे अंदर दैवीय गुणों की धार्मिक रुचि बिल्कुल **उत्पन्न ही नहीं होती**

या ऊपरी सी ही होती है । इस दुर्दशा से बचने का एक ही इलाज है कि जब भी कोई रोष, शिकवे, ताने, शिकायतें मन में उत्पन्न हों, तब उन्हें **उसी वक्त ही 'रहने दो' या 'कोई नहीं' कह कर भुलाने का यत्न करें तथा फिर बार-बार याद न करें।** क्योंकि जितनी बार किसी ख्याल को याद किया जाये, वह ख्याल हमारे हृदय पर चढ़ कर **गहरा अंकित हो जाता है** तथा फिर उस ख्याल को मिटाना, उससे बचना या **अलिप्त रहना कठिन हो जाता है** ।

तुच्छ ख्यालों की रंगत से बचने या अलिप्त रहने में सहायक दैवीय गुणों को ग्रहण करने की इस प्रकार ताकीद की गयी है —

'रोस न काहू संग करहु'

'पर का बुरा न राखहु चीत'

'बुरे दा भला करि गुसा मनि न हंढाइ'

'पर निंदा सुणि आपु हटावै,

'साझ करीजै गुणह केरी छोडि अवगण चलीऐ'

'दया छिमा तन प्रीति'

'निंदा भली किसै की नाही'

वेख के अणडिठ करना

सुण के अणसुणा करना ।

'गुरमुखता' तथा 'अलिप्तता' एक दूसरे के प्रेरक, सहायक तथा संयुक्त अंग हैं । **अलिप्त रहे बिना गुरमुख नहीं बन सकते तथा गुरमुख बनकर फिर सहज स्वभाव ही अलिप्त रहा जाता है।** पहले गुरमुख बनना है तथा गुरमुख बनने के लिए अलिप्त रहना जरूरी ही नहीं अपितु अनिवार्य है ।

गुरमुखि होइ सु अलिपतो वरतै

ओस दा पासु छडि गुर पासि बहि जाइआ ।। (पृ ३०३)

गुरमुखि होइ सु करे वीचारु ओसु अलिपतो रहणा ।। (पृ ९५३)

गुरसिख जोगी जागदे माइआ अंदरि करनि उदासी ।

(वा.भा.गु २९/१५)

गुरमुखि सचु अलिपतु है कूड़हु लेपु न लगै भाई ।

चंदन सपी वेड़िआ चड़ै न विसु न वासु घटाई । (वा.भा.गु ३०/१८)

गुरमुख वह है, जिस के मन का रुख गुरू की ओर हो अर्थात गुरू के सन्मुख होकर गुरू के हुकुम में, गुरू के प्यार में, गुरू के परायण होकर **गुरू के नाम रंग में रंगा हो** , तथा गुरू उपदेशों से प्रेरणा लेकर **दैवीय आत्मिक जीवन जीये**।

जे को सिखु गुरू सेती सनमुख होवै ।
होवै त सनमुखु सिखु कोई जीअहु रहै गुर नाले ।।
गुर के चरन हिरदै धिआए अंतर आतमै समाले ।।
आपु छडि सदा रहै परणै गुर बिनु अवरु न जाणै कोए ।।
कहै नानकु सुणहु संतहु सो सिखु सनमुखु होए ।। (पृ ९१९)

गुरबाणी में **'मिलु साध संगति भजु केवल नाम'** बहुत ही कमाल की युक्ति बतायी गयी है । **साध संगति रूपी 'मेंड़' के अन्दर रहते हुए** हम माया की कुसंगति के प्रभाव से बच सकते हैं या **अलिप्त रह सकते हैं** तथा 'नाम-सिमरन' हो सकता है ।

साध कै संगि माइआ ते भिंन ।। (पृ २७१)

प्रभु का सिमरनु साध कै संगि ।। (पृ २६२)

वास्तव में हमें अपने मन की वास्तविक हालत या दुर्दशा का सही ज्ञान ही नहीं है । क्योंकि हम अपने मन की वास्तविक दुर्दशा से बिल्कुल **बेपरवाह तथा अनजान हैं** तथा इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं होती तथा जानबुझ कर लापरवाह या मस्त हो कर अपनी आदतों तथा संस्कारों के वेग में अन्धाधुन्ध बहते जा रहे हैं। अनोखी बात तो यह है कि जहाँ स्वयं तो हम अज्ञानता में **'पलचि-पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु' में बहते जा रहे हैं** — वहाँ दूसरों पर नुक्ताचीनी तथा आरोप लगाने के लिए तत्पर तथा उतावले हुए रहते हैं। अपने अहम् तथा अकल के 'सींग' तीखे करके दूसरों के साथ भिड़ते रहते हैं तथा इसमें अपना बड़प्पन तथा मान समझते हैं। ऐसी मानसिक ग्लानि में गलतान रहना **अलिप्त रहने के पाठ से ठीक विपरीत है** ।

हमारी मानसिक दुनिया में एक दोष यह भी है कि **हम सभी खाह-मखाह, व्यर्थ, अनावश्यक बातों में अपना बहुमूल्य समय व्यर्थ खो रहे हैं**। जहाँ पुरुष कारोबारी, राजनैतिक, भाईचारिक मामलों में व्यर्थ बहस कर के समय बरबाद करते हैं, वहाँ स्त्रियाँ खाने-पीने, कपड़े, गहने, बच्चों तथा सम्बन्धियों की बातों या निंदा-चुगली में तल्लीन रहती हैं। इस प्रकार किसी को भी अलिप्त रहने के **सबक की**

सूझ ही नहीं । इसी कारण हम धर्म के दैवीय गुणों से दूर तथा वंचित होते जा रहे हैं ।

यदि किसी ने शहरों में **सट्टे का बाजार** देखा हो, तब उन्हें पता होगा कि वहाँ अनगिनत व्यापारी इकट्ठे होते हैं तथा ऊँची-ऊँची बोलियां देते हैं — जिस कारण वहाँ **शोर-शराबा मचा** रहता है ।

ठीक इसी प्रकार हमारे मन रूपी सट्टे के बाजार में कई प्रकार के व्यक्ति या 'रव्याली' मायिकी व्यापारियों ने **दिन-रात खिचड़ी पकाई हुई है,** जिस कारण हमारा मन एक क्षण के लिए भी नहीं टिकता। यह ऊपरी **रव्याली व्यर्थ दुनिया** हमनें अपने आप मन मे बसायी हुई है तथा इस स्वयं आमन्त्रित रव्याली, अनावश्यक, दुखदायी दुनिया में ही हमारा मन हर वक्त खचित रहता है तथा हम अमूल्य जीवन को 'पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु' अनुसार **व्यर्थ खो रहे हैं ।**

बाहरी शत्रुओं से तो बचाव हो सकता है, परन्तु आस्तीन में रहते शत्रुओं से बचने का कोई उपाय नहीं है । भीतरी शत्रुओं के गुप्त वार से तो हम हमेशा ही मार खाते रहते हैं ।

इस प्रकार हम आन्तरिक **स्वयं बसायी तथा पाली हुई रव्याली दुनिया के व्यर्थ रुझान तथा भगदड़ में अति दुखी हो कर नरकमयी जीवन भोग रहे हैं । 'शान्त' तथा 'अलिप्त' रहना तो किसी को याद ही नहीं आता तथा न ही इस की आवश्यकता प्रतीत होती है ।**

इस विषय पर गुरबाणी यूँ उपदेश देती है —

सेवा चउचकिआ चउवाइआ एहु मनु इकतु घरि आणि ।।
एहड़ तेहड़ छडि तू गुर का सबदु पछाणु ।। (पृ ६४६)

चिंतत ही दीसै सभु कोइ ।।
चेतहि एकु तही सुखु होइ ।। (पृ ९३२)

हम इन उपदेशों के अतिरिक्त बाकी सम्पूर्ण बाणी को भी ऊपरी मन से **पढ़-सुन लेते हैं,** परन्तु इनके **आन्तरिक भावों की ओर ध्यान तो क्या देना था, ध्यान देने की आवश्यकता ही प्रतीत नहीं करते — पालन करने का रव्याल भी नहीं आता ।**

हमारा मन दिन-रात 'अनेक चिंतन' में व्यस्त रहता है, परन्तु गुरबाणी का स्पष्ट हुकुम है कि **'चेतहि एक'** अर्थात **'एक चिंतन'** में मन लगाये रखना है।

हमारे अहम्मय मन को गुरू साहिबान ने 'सेवा चउचकिआ चउवाइआ' के **गहरे कटाक्ष भरे शब्दों से** सम्बोधित करके ताड़ना की है कि अनेक रुझानों में खप कर कुसंगति करने की अपेक्षा **'इकतु घरि आणि' की शिक्षा ले** । अर्थात एक 'नाम' के घर निवास करे। यह तब ही हो सकता है जब हम 'अलिप्त' रहने का पाठ सीख कर अपनी अल्पबुद्धि की **उक्ति-युक्तियोंपूर्ण चतुराई छोड़ कर गुरू का 'परम तॅत रूप शबद' पहचाने ।**

सर्दियों में हम ठंड से बचने के लिए, गर्म कपड़े तथा रजाईयों आदि का प्रयोग करते हैं । कई बार हमने इस बात को देखा होगा कि सोते समय यदि किसी तरफ से भी रजाई का हिस्सा उठ जायें, तब वहीं से ठंड लगनी शुरु हो जाती है, तथा हम सब तरफ से रजाई को नीचे दबा लेते हैं, तांकि **ठंड अन्दर न आ सके तथा रजाई की ऊष्णता भीतर कायम रहे ।** इसी कारण हम सर्दियों में महंगे गर्म कपड़े खरीदते हैं। परन्तु यदि गौर करके जांचा जाये तब वास्तविकता का पता लगेगा कि गरम कपड़ों या रजाई में अपनी कोई गर्मी या उष्णता नहीं है — **अपितु 'ऊष्णता' तो वास्तव में हमारे शरीर में है।** यह शारीरिक अग्नि या गर्मी हमारे शरीर के अन्दर ही विद्यमान है, परन्तु जब बाहर की ठंडी हवा लगती है, तब यह **'गर्माइश' उड़ जाती है या नष्ट** (neutralise) **हो जाती है** तथा हमें ठंड महसूस होने लगती है।

इस 'बाहर की ठंडी हवा' तथा 'शारीरिक ऊष्णता' के बीच **यदि कोई रुकावट अथवा बचाव हो जाये**, तब ही बाहर की ठंड बाहर तथा भीतरी शारीरिक गर्माइश अन्दर कायम रह सकती है । अर्थात इन दोनों — 'बाहरी ठंड' तथा 'भीतरी गर्मी' के मध्य कोई **पर्दा** (insulation) **किया जाये** ताकि एक दूसरे का मेल न हो सके । इसी नियम (insulation) अनुसार ठंडे देशों में मकान वातानुकूल (air-condition) किये जाते हैं । इस प्रकार यदि बाहर बर्फ पड़ती हो, तब घर के अंदर बिजली से गर्म रहता है क्योंकि दीवारों में मसाला (insulation) डाल कर बाहर की ठंडी हवा को अन्दर धँसने से रोका जाता है । दूसरे शब्दों में अन्दर की गर्माइश को बाहर की ठंडी हवा से अलग या **'अलिप्त'** रखा जाता है ।

ठीक इसी प्रकार हमारी **अन्तरात्मा में ईश्वरीय 'प्रीत-प्रेम-रस-चाव' का स्रोत है**, परन्तु हम इन दैवीय गुणों से वंचित जा रहे हैं, क्योंकि हमारे मन की वृत्ति सुरति बाहरमुख होने के कारण, हम इन दैवीय गुणों जैसे 'प्रेम-शान्ति-रस-चाव' के सुख से अनजान, लापरवाह तथा विमुख हो कर, बाहरी रस-कस के क्षण भंगुर सुखों

के पीछे अन्धाधुन्ध दौड़ते रहते हैं। दूसरे शब्दों में, हम **बाहरमुख हो कर अपने आन्तरिक शान्ति-रस-चाव-प्रीत-प्रेम के दैवीय तथा सदैव सुखों से वंचित जा रहे हैं।**

यदि हम अर्न्तमुख ईश्वरीय प्रीत-प्रेम-रस-चाव के आत्मिक स्नेह का आनंद लेना चाहते हैं, तब हमें **'बाहरमुख' होने की अपेक्षा 'अन्तर्मुख' होना पड़ेगा,** अन्यथा समस्त दुनिया की भाँति हम भी बाहरमुख दुनिया में 'पलचि पलचि सगली मुई झूठै धंधै मोहु' वाला जीवन ही व्यतीत करते रहेंगे तथा हमारा मन मायिकी दुनिया के तीक्ष्ण तथा तीखे तीरों का शिकार (target) ही बना रहेगा।

दुनीआ केरी दोसती मनमुख दझि मंरनि ।।
जमपुरि बधे मारीअहि वेला न लाहंनि ।। (पृ. ७५५)

बाहरमुख वृत्ति को 'अर्न्तमुख' करने का सब से आसान तथा सरल तरीका गुरबाणी में बताया गया है — **'अलिप्त जीवन यापन करना'।** हमारे मन की वृत्ति-सुरति जो सदा 'बाहरमुख' रहती है, उसे **पल्टा कर अन्तर्मुख करना।**

से वडभागी जिन सबदु पछाणिआ ।।
बाहरि जादा घर महि आणिआ ।। (पृ. ११७५)

साइर सपत भरे जल निरमलि उलटी नाव तरावै ।।
बाहरि जातौ ठाकि रहावै गुरमुखि सहजि समावै ।। (पृ. १३३२)

''गुब्बारा'' (Balloon)

गुब्बारे में हवा से भी हल्की गैस (gas) भरी जाती है, तथा उसे चारो ओर से रस्सियों द्वारा जमीन के साथ बाँधा जाता है। जब वह गुब्बारा गैस से भर कर छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है, तब उसकी **समस्त रस्सियाँ एक दम खोल दी जाती हैं** तथा वे स्वयं ऊपर उठ कर अन्तरिक्ष में उड़ान भरता है।

ठीक इसी प्रकार हमारे मन-रूपी **'गुब्बारे'** में अहम्, ईर्ष्या, द्वेष, फिकर, चिंता, जलन, कुढ़न आदि तुच्छ ख्यालों की मैली तथा भारी हवा भरी हुई है तथा इसे साथ-साथ और बढाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अपने मन की तृष्णा तथा **'मेरी' की रस्सियों की गांठे अपनी 'मैं-रूपी' 'धरती' से और कसते तथा जकड़ते जाते हैं। जिस कारण हमारी 'रूह' का 'गुब्बारा', अपने केन्द्र ईश्वरीय मंडल के आकाश की ओर उड़ नहीं सकता।**

इस विचार में दो विशेष नुक्ते हैं —

1. वह **हल्की गैस** जो गुब्बारे को उड़ाती है ।
2. **मैं-मेरी की रस्सियों की पकड़ ।**

1. हमारा मन जब तुच्छ साँसारिक संकल्पों — 'काम' क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, जलन, वैर-विरोध, तृष्णा आदि में उलझा होता है तब **'मन' मैला व भारी हो कर मोह ममता की पकड़ में जकड़ जाता है ।**

नानक अउगुण जेतड़े तेते गली जंजीर ।। (पृ ५९५)

काम क्रोधि लोभि मोहि बाधा ।।
महा गरत महि निघरत जाता ।। (पृ ७४१)

2. **मैं-मेरी (attachment) की रस्सियों से हमने अपने मन को माया की धरती से बहुत पक्की गाँठों द्वारा बाँधा हुआ है,** जिस कारण हमारी **'रूह' के लिए अपने केन्द्र ईश्वरीय मंडल में उड़ान भरना असम्भव है ।**

मेरी मेरी धारि बंधनि बंधिआ ।। (पृ ७६१)

मेरी मेरी धारी ।। ओहा पैरि लोहारी ।। (पृ १००४)

उत्तम पवित्र आत्मिक प्रेम स्वैपना के मंडल में उड़ान भरने के दो ही साधन हैं —

1. अपनी 'रूह' के गुब्बारे में **हलकी गैस,** अर्थात 'साध-संगति' में विचरण करते हुए अपने हृदय के अन्दर 'वैराग्य' उत्तम पवित्र सुन्दर भावनाएं 'नाम का रंग', श्रद्धा, **प्रेम-भावना तथा प्रेम स्वैपना पैदा करें,** जो कि मायिकी ख्यालों की वाशनाओं से बहुत हल्की गैस है, **जिससे हमारा मन निर्मल हो जाता है ।**

साध संगति जो हरि गुण गावै सो निरमलु करि लीजै ।। (पृ ७४७)

पंच बिकार मन महि बसे राचे माइआ संगि ।।
साधसंगि होइ निरमला नानक प्रभ कै रंगि ।। (पृ २९७)

सबद सुरति लिवलाइ हुकमु कमाइआ ।
साध संगति भै भाइ निज घरि पाइआ । (वा.भा.गु ३/२०)

2. दूसरा साधन है — **'दुनिया तथा रिश्तेदारी' की 'पक्की गाँठे' खोलनी ।** जितनी देर तक हम यह 'मैं-मेरी' की रस्सियाँ ढीली करके नहीं खोलते हमारे पाठ, पूजा, भजन, बंदगी आदि धार्मिक कर्म-कांड ही बन कर रह जाते हैं।

इसका प्रत्यक्ष परिणाम हमारी वर्तमान शारीरिक-मानसिक-धार्मिक तथा आत्मिक दशा है ।

मेरी मेरी करि करि मूठउ पाप करत नह परी दइआ ।।
महा बिकार घोर दुख सागर तिसु महि प्राणी गलतु पइआ ।।(पृ ८२६)

आत्मिक उड़ान के लिए **'कबीरा हमरा को नहीं हम किसहू के नाहि'** की भाँति **कोरे** होना आवश्यक है तथा **कोरे होकर ही 'अलिप्त' रह सकते हैं।** परन्तु हम तो **रिश्तेदारियों तथा मैं-मेरी की रस्सियाँ नित्य और पक्की कर रहे हैं तथा दुखी हो रहे हैं ।**

फासन की बिधि सभु कोऊ जानै छूटन की इकु कोई ।। (पृ ३३१)

'मैं-मेरी' में फंसना तो हर कोई जानता है, परन्तु माया रूपी सदीवी 'कैद' या 'फंदे' से छूटने के लिए हमें उन गुरमुख प्यारों, महापुरुषों से विधि सीखनी पड़ेगी जो **'अलिप्त' रहने के पाठ का पालन कर इस झूठे धंधै मोहु से मुक्त हो चुके हैं** तथा 'जिनी चलणु जाणिआ से किउ करहि विथार' के हुकुम का पालन करते हैं । परन्तु ऐसे बख्शे हुए महापुरुष दुनिया में विरले ही होते हैं —

गुरप्रसादि बिरिवआ परहरै ।। मन की बासना मन ते टरै ।।
इद्री जित पंच दोख ते रहत ।।
नानक कोटि मधे को ऐसा अपरस ।। (पृ २७४)

भाउ भगति भगवान संगि माइआ लिपत न रंच ।।
नानक बिरले पाईअहि जो न रचहि परपंच ।। (पृ २९७)

ऐसे जन विरले संसारे ।।
गुर सबदु वीचारहि रहहि निरारे ।।
आपि तरहि संगति कुल तारहि तिन सफल जनमु जगि आइआ ।।
(पृ १०३९)

'अलिप्तता', 'निरारापन' या 'उदासीनता' दो स्तर (level) पर होती है —

शारीरिक तथा **मानसिक**

जब हम अपनी बुद्धि तथा 'मन' द्वारा 'त्याग' करते हैं, तब यह दिमागी त्याग अधूरा तथा ऊपरी होता है । जब कभी हमारा मन विमुख हो जाये, तब अपनी उक्ति-

युक्तियों द्वारा मन को बहलाकर इस **ख्याली त्याग से छुटकारा पा लेते हैं**, तथा पुनः **उसी मैं-मेरी के विषम दायरे** (vicious circle) **में फँस जाते हैं** ।

गुरबाणी के अनुसार उदासीनता, वैराग्य अथवा त्याग 'शबद विचारे' वाला है, जिसे बड़े ध्यान से समझने की आवश्यकता है। गुरू से 'गुरुमंत्र' या शबद लेकर जब हम साध संगति के मार्गदर्शन तथा सहायता से दिन रात शबद कमाई करते हैं तथा जब हमारे मन-चित्त-हृदय में **शबद धँस-बस-समा जाये** , तब हमारा मन **शबद रूप हो जाता है** । इस प्रकार शबद-सुरति द्वारा शबद गुरू की चरण शरण में रंग-रस पान करता हुआ **अलमस्त मतवारा हो कर नाम महा रस में लिवलीन हो जाये, तब ही 'आत्मिक त्याग' 'उदासीनता' तथा 'अलिप्त' रहने की सही विधि आती है ।**

चरन कमल मकरंद रस लुभंत हुइ
माइआ मै उदास बास बिरलो बैरागी है । (क.भा.गु ६८)

वास्तव में मन को 'हरे अंगूरो' की भाँति मज़ेदार, **स्वादिष्ट 'चाट' चाहिए**, जिसमें वह रस लेकर **अलमस्त मतवारा हो सके** । जितनी देर मन को उत्तम-श्रेष्ठ, स्वादिष्ट 'चाट' नहीं मिलती, तब तक इसका **तुच्छ रस-कसों में तल्लीन हो कर मस्त रहना अनिवार्य है** ।

इह रस छाडे उह रसु आवा ।।
उह रसु पीआ इह रसु नहीं भावा ।। (पृ ३४२)

इसलिए तुच्छ रस-कसों की चाट पर रीझे हुए मन को, किसी उत्तम पवित्र **'प्रीत-प्रेमरस-चाव'** अथवा नाम के 'महारस' की ओर प्रेरित करने के लिए उन महापुरुषों, बख्शे हुए गुरुमुख प्यारों की संगति अथवा साधसंगति की अत्यन्त आवश्यकता है जो स्वयं सदा नाम के **अनुभव प्रकाश में ईश्वरीय प्रेम स्वैपना का रंग-रस अनुभव करते हैं** जिस कारण इनके मन पर **मायिकी रंगत का प्रभाव ही नहीं पड़ता** अथवा **'अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति इव पाईऐ', अनुसार सहज स्वभाव अलिप्त जीवन यापन करते हैं ।**

हरख सोग दुहहूं ते मुकते ।। **सदा अलिपतु जोग अरु जुगते ।।**
दीसहि सभ महि सभ ते रहते ।।
पारब्रहम का ओइ धिआनु धरते ।। (पृ. १८१)

उआ रस महि उआहू सुखु पाइआ ।।
नानक लिपत नही तिह माइआ ।। (पृ २५९)

दीसहि सभ संगि रहहि अलेपा नह विआपै उन माई ।।
एकै रंगि तत के बेते सतिगुर ते बुधि पाई ।। (पृ ७०१)

प्रेम भगति गुन गावत गीधे पोहत नह ससारु ।। (पृ १२२२)

गुरमुखि अलिपतु लेपु कदे न लागै सदा रहै सरणाई ।।(पृ. १३४४)

'अलिप्त' रहने का यही एक मात्र सरल साधन है, जिससे हमारा मन **'माया' रूपी चाट के रस-कस से उठ कर ईश्वरीय महा रस की ओर प्रेरित किया जा सकता है** या मन की रुचि को **पलटा कर 'बदला' जा सकता है। यही वास्तविक तथा पक्की सहज 'उदासीनता' है ।** इस प्रकार ही हम अपने मन को सम्पूर्ण रूप से गुरू को समर्पण कर सकते हैं तथा **माया से पूर्ण रूप से 'अलिप्त' रह सकते हैं । इस प्रकार गुरू प्यार में सम्पूर्ण 'समर्पण'** (complete surrender in love of God) **ही सब से सरल तथा सहज साधन है ।**

फफै फाही सभु जगु फासा जम कै संगलि बंधि लइआ ।।
गुर परसादी से नर उबरे जि **हरि सरणागति भजि पइआ ।।** (पृ. ४३३)

गुरमुखि होइ सु करे वीचारु ओसु अलिपतो रहणा ।।
हरि नामु जपै आपि उधरै ओसु पिछै डुबदे भी तरणा ।। (पृ ९५३)

साध संगति भउ भाउ सहजु बैराग है ।
अतरि गुरमति चाउ अलिपतु अदागु है । (वा.भा.गु ३/१३)

साध संगति सचु सोहिला गुरमुखि साध संगति लिव लाई ।
बेद कतेबहु बाहरा जमणि मरणि अलिपत रहाई । (वा.भा.गु. ५/१४)

गुरमुखि सुख फलु साध संगु माइआ अंदरि करनि उदासी ।
(वा.भा.गु १५/२१)

साध संगति भै भाइ विचि भगति वछलु करि अछलु छलणा ।
जब विच कवलु अलिपत होइ, आस निरास वलेवै वलणा ।
(वा.भा.गु १८/१७)

परन्तु गुरबाणी का उपदेश है —

अंदरहु जिन का मोहु तुटा तिन का सबदु सचै सवारिआ।।

(पृ. ९१७)

गुरबाणी के इस हुकुम का **पालन करने से** ही हमारा मन अपने आप सहज स्वभाव **'मैं-मेरी' से त्यागी, उदासीन, निरारा तथा 'अलिप्त' रह सकता है।**

अलिप्त रहने में सहायक गुरबाणी की निम्नलिखित पंक्तियों को कमा कर ही हम गुरमति अनुसार 'सहज-अवस्था' की परम पदवी तक पहुँच सकते हैं —

गुरमुखि अलिपतु रहै संसारे ।।
गुर कै तकीऐ नामि अधारे ।। (पृ. ११८)

माइआ मोहि नटि बाजी पाई ।। मनमुख अंध रहे लपटाई ।।
गुरमुखि अलिपत रहे लिव लाई ।। (पृ. २३०)

अनदिनु कीरतनु केवल बख्यानु ।।
ग्रिहसत महि सोई निरबानु ।। (पृ. २८१)

नानक जीवतिआ मरि रहीऐ ऐसा जोगु कमाईऐ ।।
वाजे बाझहु सिंङी वाजै तउ निरभउ पदु पाईऐ ।।
अंजन माहि निरंजनि रहीऐ जोग जुगति तउ पाईऐ।। (पृ. ७३०)

अलिपत गुफा महि रहहि निरारे ।।
तसकर पंच सबदि संघारे ।।
पर घर जाइ न मनु डोलाए ।।
सहज निरंतरि रहउ समाए ।। (पृ. ९०४)

सदा अलिपतु रहै गुर सबदी साचे सिउ चितु लाइदा ।।(पृ. १०६१)

पर घर जाइ पराहुणा आसा विचि निरासु वलाए ।
पाणी अंदरि कवल जिउ सूरज धिआन अलिपतु रहाए ।
सबद सुरति सतिसंगि मिलि गुर चेले दी संधि मिलाए ।

(वा.भा.गु ६/६)

⌘⌘⌘⌘⌘

क्रमश.....

okfgx:

okfgx:

okfgx:

okfgx: